मेवात की मीरा : दयाबाई

*डॉ. राजेश कुमार

भक्ति परम्परा में कवि और कवियों की एक लम्बी सूची है। जहाँ सूर, तुलसी, जायसी जैसे भक्त कवियों से यह धरती श्रंगारित हुई है वहीं मीरा जैसी भक्त शिरोमणि भी इस धरती का आभूषण रही है। इसी श्रंखला में मेवात क्षेत्र की भक्त कवयित्री दयाबाई का नाम मीरा के समकक्ष की आता है।

उत्तरी भारत की संत परम्परा में मेवात के दो सम्प्रदाय प्रवत्तकों का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे हैं लालदास एवं चरणदास। लालदास जी के अनुयायी लालदासी और चरणदास जी के अनुयायी चरणदासी कहलाते हैं। लालदास का जन्म स्थान धौलीदूब (अलवर) जिले में तथा चरणदास का जन्म स्थान डहरा (अलवर) जिले में है। इन्हीं चरणदास जी ने शुकदेव नामक साधु से दीक्षा ग्रहण कर गृहस्थी रहते हुए चरणदास नाम से दिल्ली में स्थान बनाया। इनकी सिद्धि की प्रसिद्धि ने उस समय के अंधकार प्रवृत्त समाज हेतु ज्ञान–भक्ति का दीपक प्रज्ज्वलित किया, जिससे डहरा निवासी उनकी प्रधान शिष्या दयाबाई व सहजोबाई के हृदय चमत्कृत हो उठे और दोनों गुरु बहिनें गुरु सेवा में आजीवन सांसारी परमार्थी संत जीवन व्यतीत करती प्रवृत्त रही।

दयाबाई के जीवन वृत्तके बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, फिर भी जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है उससे पता लगता है कि वे अपने गुरु चरणदास जी की ही सजातीय ढूलर वैश्य थीं। उनका जन्म 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कभी 1750 और 1775 के मध्य अनुमानित है और मृत्यु सं. 1820 वि. के लगभग मानी जाती है। 1818 वि. के चैत्र सुदी सप्तमी को दयाबाई ने 'दयाबाई' नामक वाणी ग्रन्थ प्रस्तुत किया था। जिसका प्रमाण उनके इस पद से प्राप्त होता है –

चरणदास की कृपा से मन में उपज्यो चेत।

दया बोध बखत कियो परमारथ के हेत।।

संबत ठारा सै समै मुनि ढारा गए बीति।

चैत सुदी तिथी सातवीं भयो ग्रन्थ सुम रीति।।

'दयाबोध' के अतिरिक्त 'विनय मल्लिका' भी इन्हीं की कृति मानी जाती है। अपनी रचनाओं में दयाबाई की छाप विभिन्न रूपों– 'दया', 'दयाकुंवर', 'दयादास' में मिलती है। विशेष रूप से 'विनय मल्लिका' में दयादास की छाप है। विद्वान, आलोचक दयादास और दयाबाई को एक ही व्यक्ति मानते हैं।

काव्य विषय के अन्तर्गत संत काव्य धारा के कवियों एवं संतों में गुरु का महत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके लिए 'गुरु गोविन्द' में गुरु का स्थान प्रथम नहीं तो समकक्ष अवश्य रहा है। इसलिए 'गुरु महिमा का अंग' में दयाबाई गुरु की महत्ता स्पष्टतः स्वीकार करती हैं। दयाबाई की दृष्टि में गुरु चरणदास जी त्रय–ताप के हर्ता, सुख के कर्ता, परम सुख धाम ब्रह्म स्वरूप हैं। ज्ञान रहित संसार सागर में कर्मों के वशीभूत मनुष्य गुरु ज्ञान की डोरी पकड़ कर किनारे लग सकता है। अतः मनसा, वाचा कर्मणा गुरु चरणों में रति रहनी चाहिए। क्योंकि वे साक्षात् कृपा सिन्धु प्रभु हैं।

वे परम ज्ञानी एवं परम दानी हैं। गुरु सेवक अन्त में अमरों के लोक में स्थान पाता है। अतः वंदना सच्चे प्रेम और विश्वास के साथ करनी चाहिए।

गुरु ज्ञान रहित मनुष्य न ज्ञान प्राप्त कर सकता है, न ध्यान लगा सकता है, राम–भक्ति में चित्त नहीं लगा सकता, पाप कर्मों से मुक्त नहीं हो सकता, मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। गुरु कृपा से ही मनुष्य सब दुःखों से छूट ज्ञान प्राप्त कर ब्रह्म स्वरूप हो आनन्द को प्राप्त करता है। अतः शिष्य का आज्ञाकारी गुरुमुखी होना परमावश्यक है।

गुरु के बाद दयाबाई ने 'नाम स्मरण' को अधिक महत्त्व दिया है, यद्यपि यह 'नाम' गुरु द्वारा ही भेंट रूप में मिलता है, किन्तु इसमें अटल विश्वास रख विरले ही पार पाते हैं। दयाबाई ऐसी ही संत थी, जिन्होंने गुर्वोपदेश में परम श्रद्धा एवं विश्वास व्यक्त किया। वे स्पष्ट स्वीकारती हैं –

श्री गुरुदेव दया करी मैं पायो हरि नाम।

एक राम के नाम तें होत संपूरण काम।।

जिस व्यक्ति को हरिनाम की लगन हो जाती है उसे भव ताप और यहाँ तक कि 'काल–व्याल' का भय भी नहीं व्याप्त होता। हरि–विमुखों से दया बात भी नहीं करना चाहती। वह तो राम रूप में रत संत भक्तों के समक्ष ही हृदय खोलती हैं। राम नाम की नाव पर चढ़ कर ही भक्त परम धाम को प्राप्त कर मोक्ष पाता है। इ हरिनाम के प्रति आसक्ति गुरु कृपा और सतसंग से ही हो सकती हे। इसी से दयाबाई अपनी कृति 'सुमिरण का अंग' की 15वीं साखी में कहती हैं –

'दया' नाव हरिनाम की, सतगुरु सेवन हार।

साधू जन के संग मिलि निरत न लागै बार।।

'सुमिरण का अंग' में दयार्बा का 'भक्ति वीर' रूप सामने आता है। सांसारिक योद्धा भौतिक सुख सुविधाओं की उपलब्धि हेतु युद्ध करते हैं, किन्तु भक्त योद्धा आध्यात्मिक दिग्विजय हेतु युद्ध करता है। ऐसे युद्ध में समस्त तृष्णाएँ–वासनाएँ परास्त की जाती हैं तथा इन्द्रियों को अधिकार में लिया जाता है, इस प्रकार विजय हेतु भक्त योद्धा गुरु मुखी स्वामी की आज्ञा से गोविन्द नाम रूपी गदा से विजय कर्मों पर प्रहार करता है। माया–समता रहित, भगवद् भक्ति सहित भक्त संत मन से इस युद्ध में प्रवृत्त होता है। गुरु शब्द रूपी नगाड़े की आवाज पर शिष्य समस्त लोक लज्जा त्याग कर निर्द्वन्द्व भाव से लड़ता है। इस युद्ध में अहंकार रूपी शत्रु को परास्त करना परमावश्यक होता है। वस्तुतः इस युद्ध में विजयी वही हो सकता है जो –

शीश उतारै मुई धरे, जब पावै निज ठाम।

भगवान के प्रति रतिभाव उसी को हो सकता है जो मनसा, वाचा, कर्मणा उनके प्रति समर्पित हो।

प्रेमोन्मत संत भक्त को अपने तन की सुधि नहीं रहती है। उन्हें सर्वज्ञ ब्रह्म स्परूप हरि दिखाई देने लगता है। उसके लिए प्रत्येक जीव में उसकी व्यक्ति आत्मा परमात्मा सम्बन्ध से व्याप्त है। ब्रह्माण्ड में लीन संत रोम–रोम आनन्द से पुलकायमान रहता है। वह सांसारिक बुद्धि का त्याग कर दिव्य ज्ञान प्राप्त करता है, जिससे हरि विरह–वेदना असह्य जान पड़ती है। दया के इसी विरही हृदय की पुकार कितनी हृदय ग्राह्य बन पड़ी है–

प्रेम पीर अति हो विकल कल न परत दिन रैन।

सुन्दर स्याम सरूप बिन 'दया' लहत नहीं चैन।।

बिरह ज्वाल उपजी हिये राम–सनेही आय।

मन–मोहन सोहन सरस तुम देखन दा चाय।।

विरह विधा सूँ हूँ विकल दरसन कारण पीव।

'दया' दया की लहर कर क्यों तलफावों जीव।।

जनम–जनम के बीछुरे हरि अब रह्यो न जाय।

क्यों मन कूं दुःख देत है विरह तपाय तपाय।।

पंथ प्रेम को अटपटो काइयन जानत बीर।

कै मन जानत आपनौ कै ज्ञानी जेहिं पीर।।

प्रेम पगी भक्त कवयित्री की स्थिति पलकान्तर वियोग सहने में भी असमर्थ है। इससे अच्छा तो ये प्राण शरीर से विलग जाएं तो ही अच्छा है। इस प्रकार दयाबाई इस बात के लिए आश्वस्त है कि वह अपने हरि को अपने प्रेम की पवित्रता से अवश्य प्राप्त कर लेगी –

प्रेम पुंज पगटै जहाँ तहाँ प्रगट हरि होय।

'दया' दया कर देत है श्री हरि दर्सन सोय।।

प्रायः सभी संत भक्तों नं संसार की नश्वरता को स्वीकार किया है। ईश्वर ही अविनाशी, अविगत, अगम, अगोचर, अनन्त है, बाकी सभी कुछ नाशवान है। ज्ञानी संसार की असारता को जान कर विरक्त हो जाता है। अज्ञानी उसी में अनुरक्त रहता है।

दयाबाई के विचार उनके 'बेराग का अंग' विषयक साख्यिों में अधिक मुखर होकर प्रकट हुआ है।

सारा संसार स्वार्थी है। समस्त भौतिक सुख स्वपनवत् मिथ्या है। यह संसार एक सराय है जहाँ किसी का भी स्थाई वास नहीं है। काल व्याल का चर–अचर ग्रास है। अन्त समय धन–दौलत, हाथी–घोड़े, सगे–सम्बन्धी सभी साथ छोड़ देते हैं। बड़े–बड़े शूरवीर भी अन्त में खाली हाथ ही लौट जाते हैं। मृत्यु सबके लिए सम है, राजा, रंक का भेद वह नहीं करती। दयाबाई ने कहा है –

बड़ो पेट है काल को नेक न कहु अधाय।

राजा–राना–छत्रपति सबकूं लीले जाय।

इस काल समुद्र से पार पाने का एक ही उपाय है भजन रूपी नौका। सत्संग की चर्चा पूर्व में भी की जा चुकी है। क्योंकि जब मनुष्य का वास्तविक से संगति हो जाती है तो भय, ताप रहित हो तत्व वस्तु को पहचान लेता है। साधु की संगति में भी यही बात है। दयाबाई के अनुसार साधु और सांसारिक में मोटा अन्तर इस बात का है कि पहला राम में अनुरक्त है, जग का उसे ध्यान नहीं। दूसरा जग में अनुरक्त होता है, राम से उसे काम नहीं। सच्चा साधु काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ एवं षट् विकार रहित होकर ब्रह्म–भाव में लीन रहता है। उसका मन माया रहित नहीं होता। वस्तुतः साधु रूपी सिंह की अनुभव रूपी ज्ञान–गर्जना से कर्मों का भ्रम नष्ट होकर अज्ञान अदृश्य या

लुप्त हो जाता है। साधु के क्षण भर के समपर्क में करोड़ों यज्ञ, तप, व्रत, नियम आदि के ुल से भी बड़ा पुण्य होता है। क्षण मात्र के सत्संग से ही पाप नष्ट हो जाते हैं, मन को शान्ति मिलती है।

यद्यपि मान, बड़ाई, ईर्ष्या का त्याग करना बहुत मुश्किल है, किन्तु सच्चा साधु वही है जो इनका त्याग कर आठों पहर हरि–स्मरण रत रहे और दयाबाई इस दृष्टि से एक सच्ची भक्त साध्वी थीं।

***सह–आचार्य**
हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, उनियारा (टोंक)

संदर्भ सूची

1. मेवात – शब्द संस्कृत के कल्पित रूप 'मेदवा' (मेवत्ता – मेवात्ता – मेवात) से व्युत्पन्न है। मेवाती का उद्‌भव और विकास डॉ. एम. पी. शर्मा पृ. 22
2. श्री स्वामी चरणदास जी की स्मारिका, 16.9.77, अलवर, पृ. 22
3. 'भक्तमाल' नाभादास कृत, छन्द सं. 144, टीका छन्द सं. 559, 560
4. अनन्तदास कृत 'सेऊ और सम्मन की परचई' परिषद् पत्रिका, अक्टूबर 72, डॉ. महावीर प्रसाद शर्मा का लेख, पृ. 66–72
5. 'भीक' के दोहे : किफायतुल्ला सिद्दिकी, नूह (गुड़गाँव)
6. सहज प्रकाश : वेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, सन् 1967
7. संत चरणदासी सम्प्रदाय और उसका साहित्य : डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित
8. साहित्य मुखी, पृ. 66
9. एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, ग्रन्थ 3, पृ. 364
10. लीलासागर : संत जोगजीत कृत, पृ. 226
11. सहज प्रकाश : सतगुरु महिमा को अंग, वेलविडिर प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
12. सहज प्रकाश पृ.3